विष्णु खरे 15

जन्म : विष्णु खरे का जन्म सन् 1940, छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) में हुआ था।

प्रमुख कृतियाँ: **सबकी आवाज़ के पर्दे में, एक गैर रूमानी समय में, पिछला बाकी, खुद अपनी आँख से** (कविता-संग्रह); **सिनेमा पढ़ने के तरीके** (सिने आलोचना); **आलोचना की पहली किताब** (आलोचना निबंध); **यह चाकू समय** (ऑतिला योझेफ), **मरु प्रदेश और अन्य कविताएँ** (टी. एस. इलियट), **कालेवाला** (फिनलैंड का राष्ट्रकाव्य)(अनुवाद) आदि उनकी प्रमुख कृतियाँ है।

प्रमुख पुरस्कार : हिंदी साहित्य में इनके योगदान के लिए इन्हें रघुवीर सहाय सम्मान, शिखर सम्मान, हिंदी अकादमी (दिल्ली) सम्मान और मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, फिनलैंड के राष्ट्रीय सम्मान नाइट ऑफ़ दि ऑर्डर ऑफ़ दि व्हाइट रोज़ से सम्मानित किया जा चुका है।

साहित्यिक विशेषताएँ : समकालीन हिंदी कविता और आलोचनात्मक लेखन में विष्णु खरे एक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। यदि उन्होंने हिंदी साहित्य को अनेक अत्यंत गहरी विचारपरक कविताएँ दी हैं, तो साथ ही बेबाक आलोचनात्मक निबंध भी दिए हैं। विश्व साहित्य के गहन अध्ययन का प्रभाव उनके आलोचनात्मक और रचनात्मक लेखन में पूरी रंगत के साथ दिखाई देता है। विश्व सिनेमा के भी वे बहुत गहरे जानकार हैं और विगत कई दशकों से सिनेमा की विधा पर लगातार गंभीर लेखन करते रहे हैं। 1971-73 के अपने विदेश-प्रवास के दौरान उन्होंने चेकोस्लोवाकिया की तत्कालीन राजधानी प्राग के एक प्रतिष्ठित फ़िल्म क्लब की सदस्यता प्राप्त करके संसार-भर की हजारों उत्कृष्ट फ़िल्में देखीं। यहीं से सिनेमा-लेखन को गंभीरता और वैचारिक गरिमा देने का उनका सफ़र शुरू हुआ 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स', 'दि हिंदुस्तान', 'जनसत्ता', 'दैनिक भास्कर', 'दि पायोनियर', 'हंस', 'कथादेश', जैसी अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनके सिनेमा विषयक लेखन प्रकाशित होते रहे हैं। है। खरे जी तो उन विशेषज्ञों में से हैं जिन्होंने फ़िल्म का समाज, समय और विचारधारा के आलोक में विश्लेषण किया तथा संगीत, अभिनय, इतिहास, निर्देशन की बारीकियों के दृष्टिकोण से परखा।

Scanned with CamScanner

चार्ली चैप्लिन यानी हम सब

अगर यह वर्ष चैप्लिन की जन्मशती का वर्ष नहीं होता तो भी यह चैप्लिन के जीवन का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वर्ष होता क्योंकि आज उनकी सबसे पहली फ़िल्म 'मेकिंग ए लिविंग' के 75 वर्ष पूरे हो रहे हैं। पिछले 75 वर्षों से चैप्लिन की कला दुनिया के सामने है और लगभग पाँच पीढ़ियों को मुग्ध कर चुकी है। समय, भूगोल तथा संस्कृतियों की सीमाओं को लाँघता हुआ चार्ली आज भारत के लाखों बच्चों को हँसा रहा है जो उसे जीवन भर याद रखेंगे। पश्चिमी देशों में तो बार-बार चार्ली का पुनर्जीवन होता ही रहता है, लेकिन विकासशील दुनिया में जैसे-जैसे वीडियो और टेलीविज़न का प्रसार होता जा रहा है, शेष विश्व का एक बहुत बड़ा दर्शक वर्ग भी नए सिरे से चार्ली को जूते 'खाने' की कोशिश करते हुए या घड़ी 'सुधारते' हुए देख रहा है। चार्ली चैप्लिन की कुछ ऐसी फ़िल्में या उपयोग में लाई गई रीलें भी मिली हैं जिनके बारे में शायद कोई जानता नहीं था। अभी आगामी 50 वर्षों तक चैप्लिन पर काफ़ी कुछ कहा जाएगा।

उनकी फ़िल्में भावनाओं पर आधारित हैं, बुद्धि पर नहीं। 'लास्ट इयर इन मारिएनबाड', 'मेट्रोपोलिस', 'दी कैबिनेट ऑफ़ डॉक्टर कैलिगारी', 'द सैक्रिफाइस', 'द रोवंथ सील' जैसी अनेक फ़िल्में दर्शक से एक उच्चतर अहसास की माँग करती हैं। चैप्लिन की विशेषता यही है कि उनकी फ़िल्मों को पागलखाने के मरीज़ों, विकल मस्तिष्क वाले व्यक्तियों से लेकर आइन्स्टाइन जैसे महान प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति तक सूक्ष्मतम रसास्वादन के साथ देख सकते हैं। चाली चैप्लिन ने न केवल फ़िल्म कला को लोकतांत्रिक बनाया, बल्कि दर्शकों की वर्ग तथा वर्ण-व्यवस्था को भी तोड़ा। इसलिए यह अकारण नहीं है कि कोई भी व्यक्ति, जो समूह या तंत्र गैर बराबरी नहीं मिटाना चाहता, वह अन्य संस्थाओं के साथ-साथ चैप्लिन की फ़िल्मों पर भी हमला करता है। चैप्लिन तो भीड़ का वह बच्चा है जो केवल इशारे से ही यह बतला देता है कि राजा भी उतना ही नंगा है जितना कि मैं हूँ और भीड़ हँस पड़ती है। कोई भी तंत्र या शासक जनता का अपने ऊपर हँसना कभी पसंद नहीं करता। एक परित्यक्ता, और दूसरे दर्जे की स्टेज अभिनेत्री का बेटा होना, बाद में भयानक गरीबी तथा माँ के पागलपन से निरंतर संघर्ष करना, साम्राज्यवाद, औद्योगिक क्रांति, सामंतशाही तथा पूँजीवाद से मगरूर समाज द्वारा बार-बार दुरदुराया जाना—इन सबसे चार्ली चैप्लिन को ऐसे जीवन-मूल्य मिले जो करोड़पति बन जाने के बावजूद अंत तक उनमें विद्यमान रहे। अपनी नानी की ओर से चार्ली खानाबदोशों से जुड़े हुए थे और यह एक संभावना बनी हुई है कि शायद उस खानाबदोश स्त्री में भारतीयता विद्यमान हो क्योंकि यूरोप के जिप्सी भारत से ही गए थे– और अपने पिता की ओर से वे एक यहूदी थे। इन जटिल परिस्थितियों ने चार्ली को एक 'बाहरी' और 'घुमंतू' चरित्र बना दिया। वे कभी-भी उच्चवर्गी, बुर्जुआ या मध्यवर्गी, जीवन-मूल्य न अपना सके। अगर उन्होंने अपनी फ़िल्मों में अपनी सबसे प्रिय छवि 'ट्रैम्प' (खानाबदोश, बद्दू, आवारागर्द) को प्रस्तुत किया है तो उसके कारण उनके अवचेतन तक जाते हैं।

चार्ली चैप्लिन पर कई फ़िल्म समीक्षकों ने ही नहीं, बल्कि फ़िल्म कला के उस्तादों और मानविकी के विद्वानों ने भी अपने सिर धुने हैं तथा उन्हें नेति-नेति कहते हुए यह भी स्वीकार करना पड़ रहा है कि चार्ली पर कुछ भी

Scanned with CamScanner

उस पर लिखना कठिन होता जा रहा है। वास्तव में सिद्धांत कला को जन्म नहीं देते, बल्कि कला स्वयं अपने सिद्धांत या तो अपने साथ लेकर आती है या बाद में उन्हें गढ़ना पड़ता है। जो करोड़ों लोग चैप्लिन को देखकर हँस-हँसकर अपने पेट दुखा लेते हैं उन्हें जेम्स एजी या मैल ओटिंगर की अत्यंत सारगर्भित समीक्षाओं से क्या लेना-देना? वे तो चार्ली को समय और देश की सीमा से काट कर देखते हैं और जो वे देखते हैं उसकी कला आज तक ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। यह कहना कि वे चार्ली में अपने आप को देखते हैं तो यह दूर की कौड़ी लाना है, लेकिन जैसा वे चार्ली को देखते हैं वह उन्हें काफी जाना-पहचाना लगता है। जिस मुसीबत में वह खुद को हर दसवें सेकेंड में डाल देता है वह एक सुपरिचित-सी लगती है। स्वयं को तो नहीं किंतु वे अपने किसी परिचित या देखे हुए व्यक्ति को ही चार्ली मानने लगते हैं। कला में सबसे बेहतर क्या है– बुद्धि को प्रेरित करने वाली भावना अथवा भावना को उकसाने वाली बुद्धि? चार्ली ने भावना को चुना और उसके भी कई कारण थे। बचपन की दो घटनाओं ने चैप्लिन पर बहुत गहरा और स्थायी प्रभाव डाला था। एक बार बचपन में जब वे बीमार थे, तब उनकी माँ ने उन्हें ईसा मसीह का जीवन-वृत्तांत बाइबिल से पढ़कर सुनाया था। ईसा मसीह के सूली पर चढ़ने के प्रकरण तक पहुँचते-पहुँचते माँ और चार्ली दोनों रोने लगे। अपनी आत्मकथा में चैप्लिन ने लिखा भी है :

'ओकले स्ट्रीट के तहखाने के उस अँधियारे कमरे में माँ ने मेरे सामने संसार की वह सबसे दयालु ज्योति उजागर कर दी जिसने नाट्य और साहित्य को उनके समृद्धतम और महानतम विषय दिए हैं : करुणा, स्नेह और मानवता।'

दूसरी घटना भी कुछ कम मार्मिक नहीं है। उन दिनों चार्ली एक ऐसे घर में रहता था जहाँ से कसाईखाना ज्यादा दूर नहीं था। वह रोज सैकड़ों जानवरों को वहाँ ले जाते हुए देखता था। एक दिन एक भेड़ किसी तरह जान बचाकर वहाँ से भाग निकली। उसे पकड़ने वाले उसका पीछा करते समय कई बार फिसलकर गिरे और पूरी सड़क पर देखने वालों के ठहाके गूँजने लगे। अंततः उस गरीब जानवर को पकड़ लिया गया और वे उसे फिर से कसाई के पास ले जाने लगे। तब चैल्पिन को अहसास हुआ कि अब उस भेड़ के साथ क्या होगा। वह रोता हुआ माँ के पास पहुँचा, 'वे उसे मार डालेंगे, वे उसे मार डालेंगे।' बाद में चार्ली ने अपनी आत्मकथा में भी लिखा: 'वसंत की वह बेलौस दोपहर तथा वह मज़ाकिया दौड़ कई दिनों तक मुझे याद रही; और आज मैं कई बार सोचता हूँ कि कहीं उस घटना ने ही तो मेरी भावी फ़िल्मों की भूमि तय नहीं कर दी थी– त्रासदी एवं हास्योत्पादक तत्वों के सामंजस्य की भूमि।'

भारतीय कला तथा सौंदर्यशास्त्र को बहुत-से रसों का पता है, उनमें से कुछ रसों का किसी कलाकृति में एक साथ पाया जाना श्रेयस्कर भी माना गया है, जीवन में हर्ष एवं विषाद तो आते ही रहते हैं, यह संसार की सभी सांस्कृतिक परंपराओं को मालूम है, किंतु करुणा का हास्य में बदल जाना एक ऐसे रस-सिद्धांत पर आधारित है जो भारतीय परंपराओं में नहीं पाया जाता। 'रामायण' तथा 'महाभारत' में जो हास्य रस है वह 'दूसरों' पर है और मुख्यतः वह परसंताप से ही प्रेरित है। जो करुणा है वह तो केवल सद्व्यक्तियों के लिए ही है और कभी-कभार दुष्टों के लिए भी है। संस्कृत नाटकों में जो विदूषक पात्र होता है वह राजव्यक्तियों से थोड़ी बहुत बदतमीजियाँ अवश्य करता है, परंतु हास्य और करुणा का सामंजस्य उसमें भी नहीं है। अपने ऊपर हँसने तथा दूसरे लोगों में भी वैसा ही माद्दा पैदा करने की शक्ति भारतीय विदूषकों में बहुत कम नज़र आती है।

अतः भारत में चैप्लिन के इतने व्यापक स्वीकार का एक विशेष सौंदर्यशास्त्रीय महत्त्व तो है ही, साथ ही भारतीय जनमानस पर उसने जो भी प्रभाव डाला होगा उसका पर्याप्त मूल्यांकन शायद अभी होना बाकी है। हास्य कब करुणा में परिवर्तित हो जाएगा और करुणा कब हास्य में बदल जाएगी इससे सैद्धांतिक या पारंपरिक रूप से अपरिचित भारतीय जनता ने उस 'फ़िनोमेनन' को इस प्रकार स्वीकार किया जैसे बत्तख पानी को स्वीकार करती है। किसी 'विदेशी' क़ला-सिद्धांत को इतने अच्छे ढंग से पचाने से कुछ अलग ही प्रश्न खड़े होते हैं और मुख्यतः एक प्रकार की कला की सार्वजनिकता को ही रेखांकित करते हैं।

Scanned with CamScanner

किसी भी समाज में कुछ विशेष लोगों को 'दिलीप कुमार' या 'अमिताभ बच्चन' कहकर ताना दिया जाता है किंतु किसी भी व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुसार 'चार्ली' या 'जानी वॉकर' कह दिया जाता है। यह एक स्वीकारोक्ति ही है कि हमारे बीच 'नायक' बहुत ही कम हैं जबकि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को कभी-न-कभी विदूषक अवश्य समझता है। वास्तव में मनुष्य स्वयं नियति या ईश्वर का विदूषक, जोकर, क्लाउन या साइड-किक है। यह अकारण नहीं है कि महात्मा गांधी से चार्ली चैप्लिन की अच्छी पटती थी और गांधी तथा नेहरू दोनों ने हमेशा चार्ली का सान्निध्य चाहा था।

चार्ली के विशुद्ध अभारतीय सौंदर्यशास्त्र की इतनी व्यापक स्वीकृति को देखते हुए राजकपूर ने भारतीय फ़िल्मों में एक सबसे साहसिक प्रयोग किया। उनकी फ़िल्म 'आवारा' 'दि ट्रैम्प' का केवल शब्दानुवाद ही नहीं था, ब चार्ली का भारतीयकरण भी था। वह भारतीय सिनेमा के लिए अच्छा ही था कि राजकपूर ने चार्ली की नकल के आरोपों की परवाह नहीं की। भारतीय फ़िल्मों में राजकपूर द्वारा निर्मित 'आवारा' और 'श्री 420' से पहले फ़िल्मी नायकों पर हँसने की और खुद नायकों के अपने पर हँसने की परंपरा नहीं थी। 1953-57 के दौरान चैप्लिन अपनी गैर-ट्रैम्पनुमा फ़िल्में बना रहे थे उस समय राजकपूर भारतीय चैप्लिन का युवा अवतार ले रहे थे। उसके बाद तो दिलीप कुमार (कोहिनूर, बाबुल, लीडर, शबनम, गोपी), देव आनंद (फ़ंटूश, नौ दो ग्यारह, देवियाँ), शम्मी कपूर, अमिताभ बच्चन (अमर अकबर एंथनी) और श्रीदेवी तक सभी किसी-ना-किसी रूप में चैप्लिन का कर्ज़ स्वीकार कर चुके हैं। वृद्धावस्था में जब अर्जुन अपने दिवंगत मित्र श्री कृष्ण की पत्नियों को डाकुओं से न बचा पाए और हवा में तीर चलाते रहे तो यह दृश्य करुणाजनक हिन्दी तथा हास्योत्पादक दोनों है परंतु महाभारत में उसकी केवल त्रासद व्याख्या ही स्वीकार की गई। आज भारतीय फ़िल्मों में नायक को शारी से पिटता हुआ भी दिखाया जा सकता है, किंतु हर बार हमें चैप्लिन की ही ऐसी फ़जीहतें याद आती हैं।

चार्ली चैप्लिन की अधिकांश फ़िल्में भाषा का प्रयोग नहीं करतीं, इसीलिए उन्हें ज़्यादा-से-ज़्यादा मानवीय बनना पड़ा। सवाक् चित्रपट पर अनेक बड़े-बड़े कॉमेडियन हुए हैं, किंतु वे चैप्लिन की सार्वभौमिकता के नजदीक क्यों नहीं पहुँच पाए, इसकी पड़ताल होनी अभी बाकी है। चार्ली का बच्चों जैसा दिखना या चिर-युवा होना एक विशेषता तो है ही, सबसे बड़ी खास बात शायद यही है कि वे किसी भी देश की संस्कृति को विदेशी नहीं लगते। यानी उनके आसपास जो भी चीजें, खलनायक, अड़ंगे, दुष्ट औरतें आदि मौजूद रहते हैं वे ही सतत 'परदेस' या 'विदेश' बन जाते हैं और चैप्लिन 'हम' बन जाते हैं। चैप्लिन के सारे संकटों में भी हमें लगता है कि यह 'मैं' भी हो सकता हूँ, किंतु 'मैं' से भी ज़्यादा चार्ली हमें 'हम' लगते हैं। संभवत: कुछ अर्थों में 'बस्टर कीटन' चार्ली चैप्लिन से भी बड़ी हास्य-प्रतिभा हो, परंतु कीटन केवल हास्य का काफ़्का है जबकि चैप्लिन प्रेमचंद के अधिक नज़दीक हैं।

यदि एक होली का त्योहार छोड़ दें तो भारतीय परंपरा में व्यक्ति के स्वयं पर हँसने, और खुद को जान-बूझकर हास्यास्पद बना डालने की परंपरा न के बराबर है। गाँवों और लोक-संस्कृति में तब भी वह शायद थोड़ी बहुत है किंतु नागर-सभ्यता में तो वह बिल्कुल नहीं थी। चार्ली का भारत में महत्त्व इसी बात में है कि वह हमें 'अपने जैसे' व्यक्तियों पर हँसने का अवसर देते हैं। चैप्लिन खुद पर सबसे ज़्यादा तब हँसता है जब वह खुद को आत्म-विश्वास से लबरेज़, गर्वोन्मत्त, सभ्यता, सफलता, संस्कृति और समृद्धि की प्रतिमूर्ति, दूसरों से अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ, अपने 'वज्रादपि कठोराणि' या 'मृदुनि कुसुमादपि' क्षण में दिखाता है। तब यह समझिए कि कुछ ऐसा हुआ ही चाहता है जिससे यह सारी गरिमा सुई-चुभे गुब्बारे की तरह फुस्स हो जाएगी।

अपने जीवन के ज़्यादातर हिस्सों में हम चैप्लिन के टिली ही होते हैं जिसके रोमांस हमेशा ही पंक्चर होते हैं। हमारे महानतम क्षणों में कोई भी व्यक्ति हमें चिढ़ाकर अथवा लात मारकर भाग सकता है। अपने चरमतम क्षणों

Scanned with CamScanner

भी हम पलायन तथा क्लैब्य के शिकार हो सकते हैं। कभी-कभार लाचार होते हुए विजय भी प्राप्त कर सकते हैं। मूलतः हम सब चार्ली ही हैं क्योंकि हम सुपरमैन कभी नहीं हो सकते। शक्ति, सत्ता, प्रेम, बुद्धिमत्ता और पैसे के चरमोत्कर्षों में जब कभी हम आईना देखते हैं तो चेहरा निश्चय ही चार्ली-चार्ली हो जाता है।

Scanned with CamScanner